
 प्रवचन-३८, श्लोक-५५, गाथा-४० शुक्रवार, श्रावण शुक्ला ११ दिनांक ०१-०४-१९६६

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। (अब, ३९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-)

प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख-
 निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्विम्बाकृतावात्मनि ।
 चैतन्यामृत-पूर-पूर्ण-वपुषे प्रेक्षावतां गोचरे,
 बुद्धिं किं न करोषि वाञ्छसि सुखं त्वं सन्सृतेर्दुःकृतेः ॥५५॥

प्रगट। निर्भेद, निर्भेद का अर्थ कहाँ गया ? निर्भेद। निर्भेदस्वरूप प्रगट है। निर्भेदोदित का अर्थ प्रगट इतना ही ? निर्भेद का अर्थ ऐसा है। भेदरहित उदयमान सुखमय निराकार प्रकाशमान है।

शुद्धभाव, शुद्धभाव अधिकार है न ? शुद्धभाव अर्थात् आत्मा। एक समय में आत्मा ध्रुवस्वभाव, उसे यहाँ शुद्धभाव अथवा उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है;... आत्मा शाश्वत् है, ध्रुव है। उसमें राग और द्वेष के स्थान तथा प्रकार हैं ही नहीं। समझ में आया ? आत्मा... वह प्रीति-अप्रीति राग, वह तो आस्रव है। वह स्वरूप में नहीं है। अभी, हों! वह प्रीति-अप्रीति के विकल्प हैं, वे पर्याय में, अंश में भले हो; वस्तु में नहीं है। वस्तु जिसे आत्मा, शुद्धभावरूप आत्मा (कहते हैं), वह तो प्रीति-अप्रीति रहित है। नास्ति से बात की है। अस्ति से कहा, शाश्वत् पद है।

ऐसा शाश्वत् पद अन्तर्मुख दृष्टि करने का जो विषय है, जिससे लक्ष्य और रुचि करने पर सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा शाश्वतपद चैतन्यध्रुव, वह प्रीति-अप्रीति के विकल्प से रहित निर्विकल्प तत्त्व है। समझ में आया ? शाश्वत है। शाश्वत है। तत्त्व है अरूपी, विज्ञानघन शाश्वतपद है, वस्तु। उसकी रुचि क्यों नहीं करता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दूसरी सब रुचि करता है परन्तु ऐसा भगवान आत्मा एक समय का शाश्वत स्वरूप

प्रभु, पुण्य-पाप के विकल्प और भाव से रहित, उसकी रुचि क्यों नहीं करता ? जो करना है, वह तो यह है। धर्म की स्थिति की शुरुआत में धर्मी को करने का तो यह है। समझ में आया ? शाश्वत वस्तु सत्... सत्.. सत्, उसकी रुचि, पुण्य-पाप के विकल्परहित तत्त्व की रुचि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और प्रथम धर्म है। उसके बिना इसे एक भी धर्म सच्चा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

जो सर्वथा अन्तर्मुख। कैसा है आत्मा वस्तु शुद्धभाव ? ध्रुवस्वभाव अर्थात् अशुद्ध उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो चार पर्याय हैं, ऐसी अपेक्षा की पर्यायरहित का तत्त्व है, वह सर्वथा अन्तर्मुख है, सर्वथा अन्तर्मुख है। समझ में आया ? बाहर की जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि पर्याय या क्षायिक समकित, चारित्रपर्याय आदि, इससे यह सर्वथा अन्तर्मुख है। वे तो बहिर पर्याय हैं। समझ में आया ? धर्म की सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि पर्याय, चारित्रपर्याय, क्षायिक समकित आदि पर्याय, वह अन्तर्मुख वस्तु नहीं है; वह तो बहिर्मुख की पर्याय प्रगट हुई है। स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ तत्त्व बहिरतत्त्व है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा कहा है न ? किसी अपेक्षा से भी उस बाह्य पर्याय के अंश में वह तत्त्व आता ही नहीं। सर्वथा (कहा तो) अनेकान्त वीतराग का मार्ग है तो कथंचित् अन्तर्मुख और कथंचित् बहिर्मुख, ऐसा होना चाहिए या नहीं ? भाई ! ध्रुववस्तु जो है, चैतन्यशुद्धभाव, एक समय का परमात्मा स्वयं वर्तमान, वह सर्वथा अन्तर्मुख तत्त्व ध्रुव है। एक समय की पर्याय में वह ध्रुव आवे, ऐसा वह तत्त्व नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् किसका आया ? वस्तु है सर्वथा अन्तर्मुख तत्त्व चैतन्यपिण्ड, विज्ञानघन, शुद्ध ध्रुव जो है, वह उत्पाद-व्यय की पर्याय में ध्रुव सर्वथा नहीं आता। गजब, भाई ! समझ में आया ? आहाहा !

वस्तु है न, वस्तु ? एक समय की पर्याय के अंश का लक्ष्य न लेकर वस्तु जो है, एक समय का ध्रुव वस्तु है, वह तो सर्वथा अन्तर्मुख ही तत्त्व है। समझ में आया ? यहाँ कहते हैं कि अरे ! प्रभु, उसकी तू रुचि क्यों नहीं करता ? समझ में आया ? इस निमित्त की रुचि, राग की रुचि, पुण्य की रुचि, पाप की रुचि, इस देह की क्रिया में करता हूँ-ऐसी रुचि; दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह विकल्प शुभराग है, उसकी रुचि, वह तो

सब मिथ्यात्वभाव है। उसकी रुचि अर्थात् यह मैं, ऐसा भाव तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? वह अन्तर्मुख तत्त्व सर्वथा है, ऐसे तत्त्व को रुचि में न लेकर, बहिर्मुख का विकल्प एक समय का क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय विकास का उघाड़ है उतना मैं, वह तो बहिर्तत्त्व है। उतना मैं, वह तो मिथ्यादृष्टि की श्रद्धा का वह भाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निहाल हो जाने की यह बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निहाल की ही बात है न, भाई! वस्तु अन्तर्मुख महान पदार्थ है। उसकी नजर तूने की नहीं, कहते हैं, भाई! यह सब नजर तेरी बाहर में वर्तती है। एक समय की पर्याय या राग की मन्दता का राग, उस पर तेरी रुचि और वह अस्तित्व और सत्त्व मैं हूँ, ऐसा जो भाव, वह तो मिथ्याभाव है, भ्रमभाव है, वह चार गति में उत्पन्न करने के बीज हैं। मोक्ष का बीज तो सर्वथा अन्तर्मुख तत्त्व, वह है। आहाहा!

सर्वथा अन्तर्मुख.. अन्तर्मुख। सर्वथा एक समय की पर्याय में बिल्कुल न आवे ऐसा, ऐसा। अन्तर्मुख.. अन्तर्मुख। पूरी चीज़ ही स्वसन्मुख पड़ी है। उसकी रुचि कर। समझ में आया? लोग ऐसा कहते हैं, ऐसा सर्वथा ऐसा है तो फिर एक समय की पर्याय रागादि है या नहीं इसमें? इसमें है ही नहीं। उसमें है नहीं, तब सर्वथा अन्तर्मुख स्थिति का सत्त्व सिद्ध होता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं न, भाई! यह पूरा द्रव्य है। यह जो पूरा द्रव्य और एक समय की पर्याय, उसे लक्ष्य में ले न, वह पूरा द्रव्य कहलाता है, वह पदार्थ कहलाता है। (तो ऐसा कहे) वह नहीं, वह वस्तु नहीं। समझ में आया?

जिसमें एक समय की दशा विकास और विकार। विकास ज्ञान, दर्शन, वीर्य का विकास और विकार, यह सब अपूर्ण और विपरीत, इस तत्त्व में अन्तर्मुख तत्त्व आता नहीं। अन्तर्मुख तत्त्व जो सर्वथा वह पर्याय में नहीं और वह पर्याय अन्तर्मुख तत्त्व में नहीं। आहाहा! लोगों को भारी कठिन पड़े, इसलिए फिर यह रास्ता ऐसा कर दिया है न। लोगों को वह अच्छा लगता है—भक्ति करे, पूजा करे, दान, दया, करे, ऐसे करते-करते धर्म होगा। आहाहा! भाई! वह धर्म नहीं। समझ में आया?

वस्तुस्वभाव जो सत्त्व है, चैतन्य का सत्त्व है, तत्त्व है, भाव है, शुद्ध है, एकरूप है, ऐसा जो भाव, उसे सर्वथा अन्तर्मुख वस्तु और वह निर्भेद (तत्त्व है)। निर्भेद पर लक्ष्य गया, इसलिए फिर तुम्हारे प्रगट खटका। भाई! प्रगट खटका। कि एकरूप उदय है, ऐसा।

निर्भेद उदय है। एकरूप उदय है। उदय अर्थात् एकरूप है, ऐसा। एकरूप वस्तु प्रकाशमान है। समझ में आया? प्रगट कहो तो भी प्रगट है, वह बराबर है। वस्तु, वस्तु है। एक समय का ध्रुव अनन्त सत्त्व का एक सत्त्व स्वरूप। वह प्रगट ही है। वस्तु प्रगट है, वह वस्तु है न? है। है वह है, वह अस्तिरूप से प्रगट। प्रगट अर्थात् है। वह प्रकाशमान है। निर्भेद प्रकाशमान है। प्रगट प्रकाशमान वस्तु स्वरूप ध्रुव, पारिणामिक चैतन्यभाव, स्वभावभाव वह व्यक्त, वस्तुरूप से व्यक्त है। वस्तु अव्यक्त है? पर्याय में व्यक्त प्रगट नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वस्तुरूप से तो निर्भेद, प्रगट, प्रकाशमान वस्तु अन्तर्मुख प्रकाशमान है। अन्तर्मुख प्रकाशमान। उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। ऐसे आत्मा को सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मारूप से कहा है और उसे शुद्धभाव कहा है। ऐसे भाव की अन्तर रुचि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! समझ में आया? ऐई! कान्तिभाई! यह निर्भेद। 'एक देखिये जानिये...' वीरजीभाई बहुत कहते थे न! आहाहा! 'एक देखिये जानिये, रमी रहिये इक ठौर, समल विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और।' यह निर्मल पर्याय और यह समल, ऐसे दो भेद भी नहीं। निर्भेद अकेला तत्त्व है। एक समय में पूरा भगवान, महापरमात्मा, महापरमात्मा स्वयं एक समय में है। उसे यहाँ सर्वथा अन्तर्मुख प्रगट प्रकाशमान वस्तु स्वरूप से ऐसा **सुख का बना हुआ,...** लो! और बना हुआ लिखा है।

निर्भेद 'शर्म-निर्मित', 'शर्म-निर्मित'। 'शर्म' अर्थात् आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द से बना हुआ अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द जिसका रूप ही वह है। आहाहा! समझ में आया? बना हुआ अर्थात्? शास्त्र में भाषा तो ऐसी ही आवे। तीन लोक छह द्रव्य से बने हैं, ऐसा आता है। पंचास्तिकाय में (आता है)। है, और बना हुआ, इस शब्द से कथन करना है। बना हुआ अर्थात् आत्मा और अनन्त आनन्द जो अतीन्द्रिय आनन्द, बेहद अतीन्द्रिय अमृत का आनन्द, उसरूप ही आत्मा है। उसे यहाँ सुख का बना हुआ, ऐसा कथन किया जाता है। आहाहा! अरे! आत्मा क्या परमात्मस्वरूप, इसका इसे कभी श्रवण करने में आया नहीं कि वह ऐसा है और श्रवण करने में आवे, उसे आनन्द बैठ न जाये, ऐसा नहीं होता, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे श्रवण किया कहलाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो समझ में आया, अर्थात् ? यह तो लड़कियाँ हैं, लड़के-लड़कियाँ हों, सब शरीर से पहिचाने जाते हैं। अन्दर में वह कुछ है ही नहीं, ऐसा कुछ कहते हैं। जो एक समय की वस्तु है, उसमें यह कहीं शरीर का यह अवयव, राग और कर्म, भेद और विकल्प और निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह भी वस्तु ध्रुव में तो है ही नहीं। फिर किसे कहना यह और किसे कहना यह नहीं। यह स्त्री और यह पुरुष.. परन्तु वह वस्तु में ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? कहो, सुमेरचन्दजी ! समझ में आया या नहीं ? ..अपने यहाँ बराबर। आहाहा ! गजब भाई ! बाहर में विवाद करके। अरे ! भगवान ! बाहर से प्रभु यह नहीं मिलेगा, भाई ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी ने, जिनने अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु एक समय में देखे। भगवान दिव्यध्वनि द्वारा कहते हैं, भाई ! तू तो ऐसा अन्तर्मुख तत्त्व है, सर्वथा, कि जो अनन्त अतीन्द्रिय बेहद.. बेहद अपरिमित अचिन्त्य जिसके सुख का स्वभाव बेहद है, ऐसा आत्मा वह ध्रुव है, उसे आत्मा कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह दुःख की विकृत अवस्था का अंश जो दिखता है, संसार का उदयभाव दुःखरूप दशा, वह वस्तु में नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :समाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाता नहीं, ऐसा ये कहते हैं। इससे यहाँ समाता नहीं।

वस्तु, वस्तु और वस्तु का स्वभाव। यहाँ भाव की व्याख्या है न ? भाव, शुद्धभाव। वह अनन्त, बेहद अतीन्द्रिय एक आनन्द, एक आनन्द, अभेद आनन्द, निर्भेद प्रगट प्रकाशमान आनन्द, ऐसा स्वरूप ही उसका है। इसलिए बना हुआ अर्थात् ऐसा है, ऐसा कहने में आता है। अरे ! भगवान ! कहते हैं कि ऐसे आत्मा के तू सन्मुख होकर रुचि क्यों नहीं करता ? करना तो यह है। आहाहा ! समझ में आया ? भाव इसके ख्याल में आवे नहीं कि यह क्या है ? तब तक इसकी सन्मुखता की इसे रुचि कैसे होगी ? समझ में आया इसमें ?

सुख का बना हुआ,... गजब भाषा, भाई ! 'निर्मित' शब्द पड़ा है न ? यह निर्मायेलो ही है। अतीन्द्रिय आनन्द से ही निर्मित है, अनादि से निर्मित है। ऐसा भगवान आत्मा, उसमें तेरी नजर करनेयोग्य है। बाकी अन्यत्र से नजर उठानेयोग्य है। आहाहा ! यह तो व्यवहार कहीं.. एक व्यक्ति को लगे। यह व्यवहार साध्य और.. क्या कहलाता है ? व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। ऐई.. ! पंचास्तिकाय (में ऐसा आता है।) आहा ! अरे ! भगवान ! वे कहें व्यवहार साधक, निश्चय साध्य। व्यवहार पहले निश्चय बाद में। सुन,

भाई! वह तो साधन अपेक्षा से विकल्प की मन्दता (हुई हो), उसे व्यवहार निमित्त की योग्यता गिनकर साधन का उपचार किया है।

भगवान आत्मा में एक साधन नाम का जैसे अनन्त अपरिमित प्रगट निर्भेद सुखस्वभाव है, वैसा इस भगवान आत्मा में करण नाम का निर्भेद, अभेद, एकरूप प्रगट 'करण' नाम का स्वभाव पड़ा है, उसे शुद्धभाव जीव कहते हैं। समझ में आया? अरे! ऐसी यह कथा किस प्रकार की? बेचारे कितने ही नये आवे, उन्हें तो ऐसा लगे। ऐई! जयचन्दभाई! यह.. कल पूछते थे न? सुरेन्द्रनगर के थे। क्षत्रिय, ब्रह्म क्षत्रिय, लुहाना थे। यह सब आत्मा की बात तुम ऐसा कि आत्मा और आत्मा। सेवा-बेवा का कुछ है या नहीं? परन्तु यह सब.. आहाहा! बड़ा बंगला, बड़ा.. यह क्या? कहते हैं। यह क्या कहलाता है तुम्हारा? आडम्बर-आडम्बर। भाई! भगवान! बापू! शान्त हो। ये चीजे किसी की करी हुई नहीं होती। वे तो उनके काल से हुई पर्यायें हैं। भाई! यह बातें गम्भीर हैं, कहा। समझ में आया? आहाहा! यह पुद्गल के परमाणु के परिणमन के समूह के काल में उनकी पर्याय रचे और उस काल में वहाँ रुक कर पड़ा हुआ है। आत्मा कर्ता है नहीं। आहाहा! यह बात। वीतरागमार्ग को सुने नहीं।

एक ओर आत्मा की बात ऐसी करो, एक ओर ऐसे सब मन्दिर, हाथी के वे बड़े.. क्या कहलाते हैं? महोत्सव। ऐई! ज्ञानचन्दजी! पंच कल्याणक। मुम्बई में देखो तो ऐसे हाथी। दो हाथी थे। नहीं? दो हाथी थे न? दो हाथी थे। तुम थे? किसी को शंका पड़ जाये, तुम मास्टर सही न। इसलिए तुम आओ या न आओ, क्या कहलाता है? दल। हेयू हेयू वह कहते हैं न, क्या कहलाता है? अत्यधिक भीड़ - ऐसा लोग नहीं कहते? अत्यधिक भीड़ अर्थात् इतने अधिक लोग। ऐसा। परन्तु ए.. तुम कहते हो कि धर्म तो ऐसे होता है, तो यह क्या? ऐई! भाई! शान्त हो, बापू! यह जगत के अजीवतत्त्व हैं और अजीवतत्त्व की भी उसके क्रमसर हुई पर्याय, उस पर्याय का कर्ता वह परमाणु है। कोई जीव कहे कि हम मन्दिर बनाते हैं, वह भ्रम है, अज्ञानी का भ्रम है। आहाहा! समझ में आया? उसे शुभभाव हो। शुभभाव हो। यह शुभभाव भी पुण्य-बन्ध का कारण है, परन्तु पाप के भाव से बचने के काल में अथवा उस काल में वही आने का उसका काल होता है। आहाहा! ऐसा शुभभाव होता है, तब इसका लक्ष्य वहाँ जाता है। इतनी इसकी मर्यादा है। इससे आगे

मर्यादा करो कि किसी ने रचा है और शुभभाव था तो यह बना है और शुभभाव था तो उससे आत्मा का धर्म हुआ है तो इस बात की सत्यता नहीं है। समझ में आया ?

अरे ! दान, पूजा में कुछ संवर-निर्जरा तो कहो। भाई ! यह बहुत करते हैं, हों ! .. भगवान ! भाई ! तुझे भगवान के भेंट की खबर नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? यह परमात्मा स्वयं एक समय का प्रभु। परमेश्वर दिव्यध्वनि द्वारा पुकार करते हैं। इन्द्र के मध्य में, करोड़ों मनुष्यों के (बीच) ध्वनि में ऐसा आवे, भाई ! तू तो अखण्ड आनन्द का कन्द बना हुआ तत्त्व है न ! ऐसा ही तेरा स्वरूप है न, भाई ! उस पर रुचि कर। बाकी सब आवे, वह जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा ! यह तो क्या बात ! इसे अनेकान्त नहीं कहा जाता, कहते हैं। एकान्त कहा जाता है। भाई ! भाषा में ऐसा आवे। व्यवहार उपादेय है, ऐसा आवे। परन्तु वास्तव में तो आत्मा के स्वभाव का शुद्ध ध्रुव के उपादेय के अतिरिक्त उसकी प्रगट हुई पर्याय भी जहाँ प्रगट करनेयोग्य है, वह उपादेय नहीं। समझ में आया ? ऐसा भगवान प्रगट निर्भेद-भेदरहित चीज़ है। यह गुणी और यह उसका सुख गुण, ऐसा जिसमें नहीं। वस्तु और उसका यह गुण सुख, ऐसा जिसमें भेद नहीं। भाई ! इसके ऊपर जरा लक्ष्य गया। 'निर्भेदोदित' है ? अर्थात् निर्भेद उदित, ऐसा सुख का बना हुआ अर्थात् एक गुण को पृथक् किया न ? ऐसा गुण, तो कहते हैं कि बापू ! यह गुण जो कहा न, तो वह निर्भेद एकरूप ही वस्तु है। उसमें फिर यह आनन्दगुण है और उसका धारक यह आत्मा है, ऐसा भी भेद नहीं। समझ में आया ? ऐसे आत्मा की, भाई ! तू रुचि क्यों नहीं करता ? आहाहा ! ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता ? भाई ! उसमें रुचि करनेयोग्य चीज़ तो पोसाण की चीज़ तो यह है। पोसाण समझते हो ? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। व्यापारी को माल देना हो तो पोसाण का माल कहलाता है। पोसाण का अर्थात् ? चार रुपये मण मैथी मिलती हो। गेहूँ लो न, गेहूँ, अभी चार रुपये मण कहाँ मिलते हैं। मैथी भी नहीं मिलती होगी। यह तो पहले की बात है। बीस रुपये मण लो न, भाई ? तुम्हारे जो हो। वहाँ से बीस रुपये मिलते हों। एक रुपया खर्च हो और फिर बाईस रुपये में बेचा जाता हो तो वह माल व्यापारी को पोसाता है। बीस रुपये में वहाँ ले और रुपया चढ़े और वहाँ बिके साढ़े बीस रुपये, तो वह माल पोसाता है ? उसका नाम यहाँ पोसाये। यह हमारी काठियावाड़ी भाषा है। बनिये को पोसाये वहाँ से माल लाये। जहाँ गेहूँ पकते हों, वहाँ से लावे, मैथी जहाँ पकती हो वहाँ से लावे। ऐई ! पीतल जहाँ से होती हो, वहाँ से लाते होंगे न बर्तन-फर्तन। बर्तन जहाँ सस्ते

मिलते हों वहाँ। यह होता है.. वहाँ ही होता है। अमुक जगह मैथी पकती है, अमुक जगह मिर्च बहुत पकती है। ऐसे ढेर के ढेर। यह 'उगामेढी' लो न मिर्च.. मिर्च। मिर्च लेने के लिये सब वहाँ आते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ बहुत मिर्च। मात्र मिर्च की गन्ध आती है। उगामेढी वहाँ मैथी का पाक अमुक जगह है। यह हमारे सब व्यापारी जानें, गेहूँ अमुक जगह से लाना, मूँग की दाल कहीं से लाना, ऐसा सब जानते हैं। क्या कहलाते हैं बीड़ी के ? पत्ते, पांड़ड़े। उसके दो प्रकार के नाम आते हैं न ? एक टीमरु और एक आपटो। वह फिर कहीं सस्ता पकता होगा, वहाँ सब जाये। वह पोसाये तो जाये, नहीं तो नहीं जाये। आहाहा !

यहाँ पोसाये ऐसा यहाँ कहते हैं, भाई ! ऐसा भगवान आत्मा **नभमण्डल समान आकृतिवाला (अर्थात् निराकार-अरूपी)** है;... देखो ! दृष्टान्त कैसा दिया है ! आकाश का मण्डल सर्व व्यापक एक है न ? आकाश का मण्डल सर्व व्यापक एक चीज़। सर्व व्यापक, व्यापक। उसकी तरह भगवान आत्मा अकृत तत्त्व है, नीचे है ? देखो ! **अकृत=किसी से नहीं किया गया।** कोई ईश्वर इसका कर्ता-भर्ता नहीं। ऐसा यह शुद्ध ध्रुवतत्त्व है। ज्ञायकभाव एक समय का परमानन्द मूर्ति। जैसे आकाश को किसी ने बनाया नहीं, वैसे आत्मा को किसी ने बनाया नहीं। कौन बनावे ? सत् है, उसे कौन बनावे ? सत् है।

आत्मा अन्तर्मुख प्रगट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है। आत्मा अन्तर्मुख अभेद अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है। स्वयंसिद्ध शाश्वत् है। लो ! स्वयंसिद्ध शाश्वत् है। उसके भाव में, ज्ञान के ख्याल में ऐसा तत्त्व है, ऐसा पहले ख्याल में आना चाहिए। आकर फिर अन्तर्मुख रुचि करने योग्य यह है, ऐसा कहते हैं। अकृत है।

चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है;... जिसका चैतन्यरूपी अमृत, चैतन्य अमृत, उसका पूर है। दल है न ? चैतन्य अमृत का दल है। स्वभाव है, सत्त्व है, भावरूप, एकरूप सत्त्वस्वभाव है। इससे भरा हुआ अर्थात् चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ। और एक कोई बर्तन हो और उसमें दूध रहे, ऐसा होगा यह ? जैसे दूध में सफेदी भरी हुई है, वह अभेद है। जैसे मिश्री में मिठास भरी हुई है, वह अभेद एकरूप है। वह मिश्री और मिठास कहीं दो भिन्न चीज़ें नहीं हैं। मिश्री कैसी है कि मिठास से भरी हुई। भरी हुई अर्थात्

अभेद एक स्वरूप ही है। इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य महाप्रभु, शाश्वत वस्तु वह सम्यग्दर्शन का विषय, जिसकी रुचि करने से आत्मा को आत्मसाक्षात्कार और सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ?

चैतन्यामृत के पूर से.. इन्हें शब्द बहुत थोड़े पड़ते हैं। **चैतन्यामृत के पूर से..** दल पड़ा है न! जागृत प्रकाश चैतन्यज्योत, जागृत प्रकाश का सत्त्व का सत्त्व, उससे भरपूर भरा हुआ स्वरूप है। यह शुद्धभाव की व्याख्या चलती है। इसलिए यहाँ कहते हैं कि आत्मा। समझ में आया ?

जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है... जो विचारवन्त, ईहा, अवाय, निर्णय, करनेवाले जीवों को, ऐसे विचारवन्त चतुर पुरुषों को 'प्रेक्षावतां गोचरे।' ऐसा है न? 'प्रेक्षावतां गोचरे।' जिसकी विचारधारा स्वभावसन्मुख होती है। ऐसे विचारवन्त चतुर पुरुषों को गम्य आत्मा ऐसा आत्मा है। वह है पर्याय। अभी तक जो कहा, वह कहा। वह शुद्धभाव ध्रुव और विचारवन्त चतुर पुरुषों को गम्य है। पर्याय विचारवन्त, वह ज्ञान की दशा। ऐसा आत्मा है। ऐसे विचारवन्त की निर्मलपर्याय को गम्य है। उससे वह जाना जा सकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : चतुर अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर अर्थात् विचारवन्त, वही चतुर है। विचार करनेवाला चतुर (गुजराती शब्द डाह्या) है। वह आत्मा, उसे चतुर कहते हैं। 'चतुर तेरी चतुराई कब कहें?' आहाहा! उसमें नहीं आता था? बांकानेर का, था न वह? डाह्याभाई होलसा। यह बहुत मानता है। मरने पड़ा तब बोला, डाह्या! तेरा डाह्यापण कब कहें? अब मरने के समय शान्ति रख तू। अभी तक सब नाटक किये न! एक-एक रात के १५००-१५००। तब, हों! बाबूभाई! खबर है न? अपने मीराबाई का नाटक देखने गये थे। भरूच (में गये थे)। मीराबाई का नाटक उसका था। देखने गये थे। वे मोहनलालजी आये थे। डाह्याभाई होलसा। एक रात के १५००, तब हों! वह तो कौन सा वर्ष होगा? (संवत्) १९६५-६६। १९६५-६६ के वर्ष की बात है। तब शरीर युवा। एक-एक रात्रि के ऐसे सत्ता के तीन (नाटक) करते थे। साढ़े चार-पाँच हजार की आमदनी, तब थी, हों! ६५ के वर्ष में। हमें तो ऐसा लगता है कि ओहो..हो..! एक रात के १५००! वह मरने के समय में उसे हैं.. हैं.. हो गया उसे। एक डाह्या! तूने यह सब अभी तक किया है न! अब मरने के समय समाधान

किस प्रकार करना ? एं.. मैं.. होता है । ऐसे अंतड़िया, कफ और उसे यह । सब इन्तजार देखे भाई को कैसा है ? भाई को कैसे है ? भाई चतुर होकर प्रसिद्ध हो, वह मरने के समय हाय.. हाय.. करे । समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर अर्थात् आत्मा को समझने की विचारधारा में वर्ते, वह चतुर । विचार और डाह्याभाई को पृथक् पाड़ते थे । खबर है, ख्याल है न । समझ में आया ? विचारवन्त चतुर, ऐसा, ऐसा है । यह तो ख्याल है, इसलिए पहले से शुरू किया । हमें खबर नहीं ? वह विचारवन्त वह चतुर, ऐसा । किसका विचारवन्त ? ऐसा ध्रुवस्वरूप जो भगवान् आत्मा, उसका विचारवन्त वह चतुर । समझ में आया या नहीं ? आहाहा ! वहाँ दो भेद करना है । विचारवन्त.. चतुर । आहाहा ! भाई ! यह विचारवन्त, वह चतुर । किसका विचारवन्त ? ऐसा आत्मा एक समय में परमात्मस्वरूप है । उसका विचारवन्त चतुर, ऐसे पुरुषों को-ऐसे आत्मा को गम्य है । पुरुष शब्द से अकेला कहीं यह पुरुषवेदवाला, ऐसा कुछ नहीं । विचारवन्त चतुर आत्मा को गम्य है । समझ में आया ? आहाहा ! आठ वर्ष की बालिका भी आत्मज्ञान करे तो उसे विचारवन्त चतुर कहने में आता है । समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुरुष अर्थात् आत्मा । समझ में आया ? यह पुरुष नहीं । यह (शरीर) तो एक पहिचानने की चीज़ है । यह जड़ की-मिट्टी की चीज़ है । इसमें पुरुष किसे कहना ? यह तो (शरीर को) मिट्टी, जड़ रजकण हैं । अन्दर पुरुषवेद का उदय है, वह विकार है, उसमें आत्मा कहाँ आया ? वह आत्मा नहीं । वह भी आत्मा नहीं और उदय का विकल्प होता है, वह भी आत्मा नहीं । आहाहा ! समझ में आया ? और उस विकल्प को जानते प्रगट ज्ञान की पर्याय, वह भी आत्मा ध्रुव, यह शुद्ध है, इस नय से । समझ में आया ? निरालम्बी मार्ग है, बापू ! सूक्ष्म है । उसे यहाँ विचारवन्त और चतुर कहा है । दूसरे विचार.. विचार.. विचारकर विपरीत विचार करके सब उल्टे को पकड़ते हैं । यह विचारवन्त चतुर वह इसे पकड़े तो उसे विचारवन्त चतुर कहने में आता है । समझ में आया ? दुनिया के चतुर लिप्त हैं, कर्म से भटकते हैं, वे चतुर कहने में नहीं आते । वे बड़े मूर्ख हैं, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! जिसके परिणाम में नरक की गति मिले, जिसके परिणाम में मक्खी और गधा हो, वह चतुर कैसा ? आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसे भगवान आत्मा के विचार की मतिधारा से चतुर पुरुष किसकी ओर ढले हैं। उन्हें वह गम्य है अर्थात् राग को गम्य नहीं, पुण्य को गम्य नहीं, व्यवहार को गम्य नहीं, ऐसा यहाँ कहा है। आहाहा! समझ में आया? कोई कषाय की मन्दता करके, राग की मन्दता, दया, दान, भक्ति, व्रत बहुत किये, इसलिए उससे आत्मा ज्ञात हो जाये। नहीं, बिल्कुल नहीं, जरा भी नहीं। आहाहा! अरे! तू ऐसा निर्बल किसलिए मानता है? ऐसे राग की मन्दता की सहायता हो तो भी मैं ज्ञात होऊँ। यह तो तूने तेरे आत्मा को तेजहीन मानकर यह बात ली है। तू ऐसा तेजहीन नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है—ऐसे आत्मा में... यह व्याख्या पूरी हुई। ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता... अर्थात् ऐसे क्यों कहा? कि कोई कर्म तुझे रोकता है, इसलिए रुचि नहीं करता, ऐसा नहीं है। आहाहा! तूने रुचि अन्यत्र की है। समझ में आया? पुण्य के परिणाम में, पाप के परिणाम में, धूल में और भोग में (रुचि की है)। आहाहा! ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता? 'बुद्धिं किं न करोषि वांछसि सुखं त्वं' है न? तू का अर्थ.. देखो! भाई! उस रुचि का तू ही कर्ता है। विपरीत रुचि का कर्ता तू है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : खड़ी की है। पुण्य-पाप के विकल्पों को मैं करूँ और वह मेरा कार्य। उसका यह करूँ, धूल करूँ, देश का करूँ, गाँव का करूँ, धूल भी नहीं करता, सुन न! विकल्प का कर्ता, वह भी तूने खड़ी की हुई विपरीतदृष्टि से है। आहाहा! पहले ऊपर निर्विकल्प तत्त्व कहा है न? भाई! ऐसे निर्विकल्प तत्त्व की रुचि क्यों नहीं करता? तेरे करने से होती है। वह कहीं कोई करावे तो होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसा मार्ग। स्वतन्त्र निर्लेपमार्ग। ऐसा परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकर का कहा हुआ, अरे! जगत को सुनने को मिलता नहीं और सुने बिना वह क्या है, इसकी खबर नहीं पड़ती। खबर पड़े बिना कहाँ झुकना, उसकी इसे (खबर नहीं)। झुकाव कैसे करना, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अरे! ऐसे आत्मा में... ऐसा आत्मा, ऐसा। समझ में आया? जो विचारवन्त चतुर

पुरुषों को गम्य है और ऊपर कहा गया वैसा है। ऊपर कहा गया वैसा है और विचारवन्त को गम्य है। उसमें तो रुचि क्यों नहीं करता? अब ऐसा कहते हैं। अर्थात् तू विचारवन्त होकर, चतुर होकर तू रुचि क्यों नहीं करता? ऐसा हुआ या नहीं? आहाहा! रुचि.. आहाहा!

और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है। अरे! इस भगवान् आत्मा की रुचि करता नहीं और शुभ-अशुभराग.. है न ऊपर? प्रीति-अप्रीति। ऐसे दुष्कृतरूपी संसार। ऐसे यह शुभ-अशुभभाव सब दुष्कृत है। उनसे हर्ष-हर्ष बिना का कहा है न उन्हें? वह शुभ-अशुभभाव तो दृष्कृत है, ऐसे संसार के स्वरूप को सुख को, जिसका फल संसार की अनुकूलता-प्रतिकूलता मिले, ऐसे को क्यों चाहता है? भाई! उसमें धूल में कहीं सुख नहीं है। समझ में आया? दोनों कहा। इसे करता नहीं और दुष्कृत / संसार के सुख को क्यों चाहता है? ऐसा। ऐसे करता नहीं और ऐसे क्यों करता है? यह श्लोक पूरा हुआ। अब ४० (गाथा)।

मुमुक्षु : यह क्यों नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे करता होगा अर्थात्?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इस विपरीत मान्यता के कारण, यहाँ कहा क्या? यह रुचि नहीं करता इसलिए। ऐसी रुचि नहीं करता, इसलिए ऐसी रुचि करता है। इसके लिये (बात है) सीधी बात है। एक और एक दो जैसी बात है। मिठास चढ़ गयी है न, मिठास ऐसे बाहर की, ऐसा कहते हैं। यह वस्तु, यह कौन है, इसके ख्याल में महत्ता और माहात्म्य ही नहीं आता। बाह्य क्रियाकाण्डी अनन्त बार साधु हुआ। पंच महाव्रत का पालनेवाला, अट्टाईस मूलगुण (पालनेवाला) दिगम्बर सन्त, हों! दिगम्बर द्रव्यलिंगी। इस प्रकार यह ऐसा आत्मा, ऐसी रुचि तू नहीं करता, तूने नहीं की और ऐसे शुभादि भाव में-रुचि में पड़ा हुआ इस संसार सुख को क्यों चाहता है। भाई! समझ में आया?

गाथा-४०

णो ठिदिबन्धट्टाणा पयडिट्टाणा पदेसठाणा वा ।

णो अणुभागट्टाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा ॥४०॥

न स्थितिबन्धस्थानानि प्रकृतिस्थानानि प्रदेशस्थानानि वा ।

नानुभाग-स्थानानि जीवस्य नोदय-स्थानानि वा ॥४०॥

अत्र प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धोदयस्थाननिचयो जीवस्य न समस्तीत्युक्तम् । नित्यनिरुपरागस्वरूपस्य निरञ्जननिजपरमात्मतत्त्वस्य न खलु जघन्यमध्यमोत्कृष्टद्रव्य-कर्मस्थितिबन्धस्थानानि । ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मणां तत्तद्योग्यपुद्गलद्रव्यस्वाकारः प्रकृति-बन्धः, तस्य स्थानानि न भवन्ति । अशुद्धान्तस्तत्त्वकर्मपुद्गलयोः परस्परप्रदेशानुप्रवेशः प्रदेशबन्धः, अस्य बन्धस्य स्थानानि वा न भवन्ति । शुभाशुभकर्मणां निर्जरासमये सुखदुःखफलप्रदानशक्तियुक्तो ह्यनुभागबन्धः, अस्य स्थानानां वा न चावकाशः । न च द्रव्यभावकर्म्मोदयस्थानानामप्यवकाशोऽस्ति इति ।

तथा चोक्तं श्री अमृतचन्द्रसूरिभिः ह

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी,

स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम् ।

अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्,

जगदपगत-मोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥

तथाहि ह

(हरिगीत)

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थान नहिं ।

नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं ॥४०॥

अन्वयार्थ : [जीवस्य] जीव को [न स्थितिबन्धस्थानानि] स्थितिबन्धस्थान नहीं हैं, [प्रकृतिस्थानानि] प्रकृतिस्थान नहीं हैं, [प्रदेशस्थानानि वा] प्रदेशस्थान नहीं

हैं, [न अनुभागस्थानानि] अनुभागस्थान नहीं हैं [वा] अथवा [न उदयस्थानानि] उदयस्थान नहीं हैं।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध के स्थानों का तथा उदय के स्थानों का समूह जीव को नहीं है—ऐसा कहा है।

सदा निरुपराग^१ जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन (निर्दोष) निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं। ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व-आकार, वह प्रकृतिबन्ध है; उसके स्थान (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं हैं। अशुद्ध अन्तःतत्त्व के (अशुद्ध आत्मा के) और कर्मपुद्गल के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश वह प्रदेशबन्ध है; इस बन्ध के स्थान भी (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं है। शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय सुख-दुःखरूप फल देने की शक्तिवाला वह अनुभागबन्ध है; इसके स्थानों का भी अवकाश (निरंजन निज परमात्मतत्त्व में) नहीं है और द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के उदय के स्थानों का भी अवकाश (निरंजन निज परमात्मतत्त्व में) नहीं है।

इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ११वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(वीरछन्द)

जिसमें बद्धस्पृष्ट आदि सब भाव सदा ऊपर तिरते ।
फिर भी वे चैतन्यरूप में कभी प्रतिष्ठित नहीं होते ॥
अहो जगतजन! मोह रहित होकर निज का अनुभवन करो ।
सर्व ओर से सदा प्रकाशित सम्यक् एक स्वभाव लखो ॥

श्लोकार्थ :— जगत को मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का ही अनुभवन करना चाहिए कि जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।

१. निरुपराग=उपरागरहित। (उपराग=किसी पदार्थ में, अन्य उपाधि की समीपता के निमित्त से होनेवाला उपाधि के अनुरूप विकारीभाव; औपाधिकभाव; विकार; मलिनता।)

गाथा-४० पर प्रवचन

४० (गाथा) इस शुद्धभाव की यह व्याख्या है । शुद्धभाव कहो या आत्मा वस्तु... वस्तु... वस्तु... ध्रुव, उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित पूरा तत्त्व । यह वस्तु क्या है, उसे यहाँ आत्मा को शुद्धभाव कहने में आता है और उसके आश्रय से नियमसार अर्थात् मोक्षमार्ग प्रगट होता है । ऐसा यहाँ कहना है । यह नियमसार है न ? मोक्षमार्ग, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र । वह ऐसे स्वरूप के आश्रय से प्रगट होता है । बाकी तीन काल में दूसरा इसका प्रकार, पन्थ और पद्धति नहीं है । समझ में आया ?

णो ठिदिबंद्धाणा पयडिड्डाणा पदेसठाणा वा ।

णो अणुभागट्ठाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा ॥४०॥

पुकार करते हैं । अरे ! परन्तु अभी यह सब है न ? तुम अबद्धस्पृष्ट अभी मानते हो ? परन्तु यह अभी की बात है, वस्तुदृष्टि की । वे कहते हैं, एकान्त हो जाता है, एकान्त हो जाता है । परन्तु पर्याय में है, वस्तु में नहीं, यह तो यहाँ बात चलती है । और पर्याय में है, वह तो लक्ष्य और रुचि अनादि की है । अब तुझे करना क्या है ? यह तो वे कहते हैं ए... ? सोनगढ़वाले ऐसा करते हैं । वे तो पर्याय और अशुद्धता नहीं मानते । भगवान ! सुन तो सही, भाई ! पर्याय में तो यह सब है । न हो तो फिर इसमें नहीं, ऐसा कहाँ से आया ? उसमें है, इसमें नहीं । इसमें हो तो फिर एकदम तत्त्व हो गया यह तो । रागादि का अंश या प्रकृति के सम्बन्ध का विकार वस्तु में हो तो यह दो तो रहे नहीं । आहाहा ! परन्तु इसमें होवे किसका ? वस्तु है पूरी चिदानन्दघन, आनन्दकन्द । एक समय का विकृतभाव खड़ा किया हुआ है । है अवश्य । वह इसमें (वस्तु में) नहीं । व्यवहारनय का विषय, व्यवहारनय का विषय वह पर्याय है अवश्य । वेदान्त की भाँति नहीं कि कुछ नहीं, वह भ्रम है, भ्रमणा है । भ्रमणा भी है या नहीं ? समझ में आया ? वेदान्त ऐसा कहता है, ऐसा नहीं है । यह तत्त्व वीतराग का कहा हुआ दूसरा है । वेदान्तवाले तो कहते हैं अकेला सर्वव्यापक आत्मा शुद्ध.. शुद्ध.. शुद्ध.. सब शुद्ध । ऐसा नहीं है । उन्हें अज्ञान में एक भी तत्त्व की खबर नहीं है । समझ में आया ? ऐसी बात सुनें, इसलिए मानो... वेदान्त की बात आवे तो ऐसी अपने में भी ऐसी बात है, ऐसी वे कहते हैं । दूसरे में धूल में भी नहीं है ।

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव, जिन्होंने एक समय में छह द्रव्य, नौ तत्त्व समय में प्रत्यक्ष जाने हैं, उन्होंने पर्याय में ऐसा जाना है, परन्तु वस्तु में नहीं, ऐसी दृष्टि करानी है। पर्याय तो है। है नहीं तो फिर यह किसे कहे ? इसमें नहीं... इसमें नहीं, इसकी रुचि कर। तो फिर इसका क्या अर्थ ? विकार नहीं ? कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी नहीं ? जड़ है ? यहाँ विकारभाव करे, उसे विकार नैमित्तिक है और कर्म निमित्त है। व्यवहार है। वस्तु में नहीं। जिसकी रुचि करनी है और जिससे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, उस चीज़ में यह नहीं। छूटने का मार्ग जिससे प्राप्त होता है, उसमें बन्ध और बन्ध के भाव कैसे होंगे ? समझ में आया ?

नीचे—

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थाननहिं ।

नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं ॥४०॥

यह नहीं-नहीं करके इसलिए वे मानो कि नहीं। तो सब व्यवहार का लोप हो जायेगा। परन्तु सुन न! यह व्यवहार के लोप की ही बात है। व्यवहार है। यह है, उसका लोप या न हो उसका ? समझ में आया ?

यहाँ (इस गाथा में) प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध,.. ज्ञानावरणीय आदि प्रकृति है न ? उसका स्वभाव। स्थिति अर्थात् उसकी अवधि। **अनुभागबन्ध..** अर्थात् उसका पाक-रस। **और प्रदेशबन्ध..** अर्थात् संख्या। रजकणों की संख्या। कर्म के चार प्रकार। एक प्रकृति कर्म का स्वभाव; एक स्थिति कर्म की अवधि, परमाणु के अन्दर; एक अनुभाग में फल लाने की उनमें शक्ति, हों! और प्रदेश अर्थात् परमाणु की संख्या, गणना। उसे यहाँ प्रदेशबन्ध कहा। ऐसे **स्थानों का..** उनके प्रकारों का। वापस सब प्रकार हैं न ? प्रकृतिबन्ध के आठ प्रकार हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरण आदि, स्थितिबन्ध के बहुत प्रकार, अनुभाग के (प्रकार)।

इन स्थानों का.. समझ में आया ? ...दूसरा बोल है न ? **उदय के स्थानों का समूह जीव को नहीं है...** यह प्रकृति आदि के चार प्रकार आत्मा में नहीं है और उनसे वापस उदय होता है। उदय हो और आत्मा में विकार हो, उसमें से यह हो, ऐसा कोई प्रकार शुद्ध

ध्रुवस्वभाव में नहीं है। जिसे शुद्धभाव कहते हैं, जिसे आत्मा कहते हैं, आत्मा ध्रुव कहते हैं, उसमें कर्म और प्रकृति का उदयधर्म कुछ नहीं है। आहाहा! यह गोम्मटसार कितने भरे हैं, लो! यह कहा है, भाई! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के व्यवहार के सब कथन हैं। वस्तु नहीं कर्म? कर्म की प्रकृति आदि सब है। आत्मा में तो नहीं, परन्तु उनके सम्बन्ध में जुड़ान होता है, योग्यता, वह भी आत्मा के द्रव्य में नहीं। जड़बन्ध तो नहीं, परन्तु भावबन्ध की जो योग्यता है, वह वस्तु में नहीं। समझ में आया? आहाहा!

चार भाव लिये हैं न, अनुभाग के? जीवस्स ण उदयठाणा उसका फिर पाक होता है न उदय होकर, ऐसा होता है, उदय होकर ऐसा होता है, उदय का यह प्रकार, जीव का ऐसा प्रकार। ऐसा तत्त्व जो चैतन्य ध्रुवस्वरूप भगवान में वह स्पर्श भी नहीं हुआ है। उसे स्पर्श भी नहीं किया है। आहाहा! समझ में आया? यह अभी, हों! अभी।

वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वह आनन्द शान्ति आदि, उस तत्त्व में चार प्रकार के वे कर्म प्रकृति स्थिति, अनुभाग, प्रदेश और उदय.. वह आत्मा को उदय आया। विपाको अनुभवः तत्त्वार्थसूत्र में आता है या नहीं? आता है या नहीं? विपाको अनुभवः यह और विपाक अर्थात् कर्म का विपाक और अनुभवे वह आत्मा। ऐसा तो नहीं परन्तु कर्म का विपाक भी आत्मा में नहीं और उसके सम्बन्ध से जरा विकार होकर वेदन करे, ऐसा विपाक भी जीव में नहीं। ऐसा शुद्धभाव, उसकी रुचि करके सम्यग्दर्शन करनेयोग्य है। उसमें करके फिर स्थिर होने योग्य है, ऐसा यहाँ कहना है। स्थिर होना अर्थात् चारित्र। पहले दर्शन और ज्ञान तथा फिर स्थिरता। यहाँ तो तीन लेना है न? मोक्षमार्ग।

सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है... लो! ठीक! भगवान आत्मा वस्तु जो है, वह सदा निरुपराग=उपरागरहित। (उपराग=किसी पदार्थ में, अन्य उपाधि की समीपता के निमित्त से...) अन्य उपाधि की निमित्त की समीपता के निमित्त से अथवा उपाधि के अनुरूप विकार। उपाधि हो, उसके अनुरूप विकारभाव। उसे यहाँ (औपाधिकभाव; विकार; मलिनता।) यह उपराग की इतनी व्याख्या की। समझे न? उससे रहित। भगवान आत्मा में कोई उपराग ही नहीं। कर्म की उपाधि के निमित्त से होनेवाला भाव, वह आत्मा में नहीं। वापस सदा, हों! तीनों काल। भगवान आत्मा एक समय का ध्रुव, वह सदा निरुपराग.. मलिन, उपाधिभाव और विकार बिल्कुल नहीं। पर्याय में है। अंश के विकृतरूप

से। ऊपर से उत्पन्न किया हुआ भाव, वह वस्तु में नहीं है। वस्तु जो महान पदार्थ भगवान्, उसमें नहीं। उसमें तो शान्ति और आनन्द बसे हुए हैं। उसमें यह विकार, निरुपाधि में यह उपाधि अन्दर कहाँ से हो? समझ में आया?

ऐसे निरंजन (निर्दोष) निज परमात्मतत्त्व को.. निज परमात्मतत्त्व को, हों! यहाँ अपने आत्मा की बात है। वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं। लो! ऐसा जो निज परमात्मतत्त्व, प्रभु! उसे निश्चयस्वरूप की दृष्टि से वस्तु को देखने पर वास्तव में, निजप्रभु को वास्तव में द्रव्यकर्म जघन्य.. जघन्य अर्थात् थोड़ा, मध्यम और उत्कृष्ट ऐसी स्थिति। स्थिति थोड़ी, अन्तर्मुहूर्त, कोई विशेष और कोई पूरी इत्यादि ऐसी स्थितिबन्ध के स्थान निज प्रभु आत्मा, शुद्धभावरूपी आत्मा उसे यहाँ निज परमात्मतत्त्व कहा। उसे शुद्धभाव कहना, उसे आत्मा कहना, उसे शुद्ध जीवास्तिकाय कहना। उसमें यह नहीं है। इससे ऐसा नहीं, उसकी दृष्टि करना, इसका सम्यग्दर्शन कहने में आता है। विशेष लेंगे।....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)